International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 114-116

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1):114-116
© 2017IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-11-2016
Accepted: 29-12-2016

गिरिराज
संस्कृत विभाग,दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
गिरिराज
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों में शब्दालंकार

गिरिराज

प्रस्तावना

ऋग्वेद को संस्कृत-साहित्य की परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। संस्कृत वाङ्मय के प्रारम्भ में ही ऐसा छन्दोबद्ध रचना का प्राप्त होना, तत्कालीन ऋषियों की नैसर्गिक-प्रतिभा का दिग्दर्शन कराता है। इसमें अनेक ऐसे स्थल प्राप्त होते हैं, जहाँ काव्य के तत्त्व रस, भाव, गुण, अलंकार, रीति आदि सहजता से मिल जाते हैं। ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों का शब्दसौन्दर्य अनेक शब्दालंकारों की उद्भावना करता है, जिनको पश्चात्वर्ती काव्यज्ञों ने शास्त्रीय विधि से व्यवस्थित करने का प्रयास किया है। ऐसे शब्दालंकारों का सामान्य दिग्दर्शन कराना प्रकृत कार्य का ध्येय है।

व्युत्पत्ति, अभ्यास आदि से शब्दों को विशेषरूप से अलङ्कृत किया जाने के कारण ये शब्दालंकार कहलाते हैं।[1]साहित्यशास्त्र में अनुप्रास की परिभाषा देते हुए प्रायः सभी आचार्य एक मत हैं कि रस के अनुगुण वर्णों की आवृत्ति होनी चाहिए। मम्मट ने भी इसी बात को हृदय में रखकर कहा है 'रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽ नुप्रासः।'[2]

ऋग्वेद में प्रायः सभी मन्त्रों में रसानुगमन करने वाले चमत्कारी वर्ण हैं। मन्त्र- ध्वनि में श्रुति को सुख देने वाले पद-वाक्य होने से मन्त्रार्थ न समझ पाने वालों को भी वेदमन्त्र सुखद लगते हैं। अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति वाले उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जो छेकानुप्रास का सौन्दर्य प्रकट करते हैं।[3] जैसे-

अवो धात विधते रत्नमद्य। ऋ. 6/65/3
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते। 6/61/13
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजत्रैः। ऋ. 4/75/7
इदमु व्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योति...। ऋ. 4/51/1
सं वर्तयति वर्तनिं.....। ऋ. 10/172/4
रुशद्वत्या रुशती श्वेत्यागादारैग। ऋ. 1/113/2

यहांभिन्न-भिन्न स्वर होने पर भी समान वर्णों की आवृत्ति होनेसे अनुप्रास अलंकार है।[4]वृत्यनुप्रास से युक्त सुन्दर पदावली का उदाहरण भी देखे जा सकते हैं जिसमें एक या अनेक वर्णों का अनेक बार आवर्तन होता है।[5] यथा-

[1] सरस्वतीकण्ठाभरण2/2
[2] का.प्र. 9/79वृत्ति
[3] सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः। का-प्र- 9/79
[4]वर्णसाम्यमनुप्रासः। स्वरवैसादृश्येऽपि व्यञ्जनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्। का.प्र. 9/79
[5]एकस्याप्यसकृत् परः। का.प्र. 9/79

सं वर्तयति वर्तनि सुजातता। ऋ. 6/65/3
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्विभाह्युषो देवि। ऋ 7/77/5
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोपां नपादवत्वाशु हेमा। ऋ. 7/47/2
गोत्रा गवामङ्रिषो गृणन्ति। ऋ. 6/66/5
प्र रोचना रुरुचे एव संदृक्। ऋ. 3/61/5
राधसोषाः शुक्रेण शोचिषा। ऋ. 1/48/14
कियात्या यत्समया भवति या व्युषुर्याश्च नूनं व्युच्छानू।
ऋ. 1/113/10

वर्णावृत्ति के साथ-साथ पदावृत्ति या द्विरुक्ति के भी अनेक उदाहरण उषस् सूक्तों में दृष्टिगोचर होते हैं। भोज के अनुसार द्विरुक्ति वीप्सा, आभीक्ष्ण्य, आवेग, शीघ्रता, संभ्रम, विस्मय आदि के कारण होती है तथा यह 'द्विरुक्ति अनुप्रास' होता है।[6] जैसे-

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति। ऋ. 7/50/4
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी। ऋ. 1/92/10
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवे दिवे अधिनामादधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदगादग्रमग्रमद्रिभजते वसूनाम्।। ऋ. 2/123/4
देवं देवं राधसे। ऋ. 7/79/5
भद्रं भद्रं ऋतुमस्मासु धेहि / ऋ. 1/123/13

ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों में यमकालंकार को पोषित करने वाले भिन्नार्थक व निरर्थक समान वर्णों की क्रमशः आवृत्ति भी देखी जा सकती है।[7]परन्तु ऋषियों की प्रवृत्ति इस ओर कम दिखाई देती है। जैसे-

अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम्। ऋ. 1/48/4

यहाँ एक कण्व शब्द का अर्थ 'ऋषि विशेष' है, तथा दूसरे कण्व शब्द का अर्थ 'मेधावी' है। द्वितीयावृत्ति में तमप् प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ भिन्नार्थक सदृश वर्णों की क्रमशः आवृत्ति हुई है। निरर्थक वर्णावृत्ति का उदाहरण है-

सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। ऋ. 10/15/6

'त्या' शब्द नदी विशेषवाची है, 'श्वेत्या' शब्द श्वेति शब्द की तृतीया-विभक्ति का एकवचनान्त रूप है, अतः इसमें योजित त्या वर्णसमूह निरर्थक है।[8]अतः यह सार्थक व निरर्थक वर्णावृत्ति यमक का उदाहरण है। ऐसे ही दोनों निरर्थक वर्णसमूह की आवृत्ति भी अनेकत्र देखी जा सकती है। यथा-प्रजावतो नृवतो। ऋ.1/92/7, वहन्तीजानाय शशमानाय। ऋ.1/113/2, आयतीनाम् प्रथमा शश्वतीनाम्। ऋ. 1/113/8 विवेचित सूक्तों के कतिपय मन्त्रों में समानार्थक की प्रतीति कराने वाले शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो वास्तव में भिन्नार्थक शब्द हैं। प्रथम दृष्टि में ऐसे शब्द समानार्थक लगने के कारण पुनरुक्त जैसा आभास कराते हैं, अतः ऐसे मन्त्र पुनरुक्तवदाभास नामक शब्दालंकार को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं।[9] यथा-

येन तोकं च तनयं च धाम। ऋ. 1/92/13

तोकं तथा तनयं दोनों ही शब्दों की गणना निघण्टु के अपत्यवाची शब्दों में हुई है।[10] तनयं शब्द का अर्थ पौत्र भी होता है, जिसका प्रयोग स्वयं यास्क ने भी किया है।[11] प्रकृत मन्त्र में तोकं का अर्थ पुत्र करने के बाद सायणाचार्य ने तनयं को पौत्रवाची शब्द माना है।[12]यहाँ पुत्र वाची शब्द तोकं के पश्चात् प्रयुक्त तनयं शब्द को देखकर पुनरुक्त का आभास होता है। अतः पुनरुक्ताभास अलंकार का सुन्दर उदाहरण बन पड़ता है।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि। ऋ. 1/48/14

यहाँ ऊतये और अवसे दोनों ही शब्दों का अर्थ ''रक्षा के लिए'' है,[13] ऐसा भान होता है, जिससे पुनरुक्ति की स्थिति बनी रहती है। परन्तु यहाँ अवसे का अर्थ 'अन्न के लिए'है। अतः यहाँ पुनरुक्त का आभास मात्र होने से रोचकता का हेतु बन जाता है।अन्यत्र भी-

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि। ऋ. 1/49/3

वयः पक्षी वाचक शब्द है, पतत्रिणः का भी अर्थ पक्षी होता है, क्योंकि यह पंखों वाला होता है। परन्तु उक्त मन्त्र में पतत्रिणः शब्द वयः का विशेषण बन गया है, जो कि स्वभावोक्ति को प्रकट करता है, अतः पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार है।

उपर्युक्त अलङ्कारों से भिन्न भी मंत्रों में वर्णों का ऐसा अद्भुत गुम्फन किया हुआ है, जो शब्द-विहीन संगीत की भांति अर्थ बोध न होने पर भी ध्वनि वैचित्र्य के कारण श्रुतिमात्र से व्यक्ति को आकर्षित करने में समर्थ है। इन सूक्तों का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि यहाँ अलंकार, रस आदि काव्यतत्त्व, जिनकी आगे चलकर सुदीर्घ सैद्धान्तिक विवेचना की गई, उनमें से कतिपय किसी न किसी रूप में वेद मंत्रों में दिखाई देते हैं। यह स्पष्ट है कि काव्यात्मक अभिव्यक्ति का कोई अनादि प्रवाह हमारे पास वेद के रूप में सुरक्षित है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि काव्यात्मक अभिव्यक्ति एक स्वतंत्र प्रवाह है जो आदि काल से चलता आ रहा है। जिसको पश्चात्वर्ती काव्यज्ञों ने काव्यशास्त्ररूप तटबन्ध का निर्माण कर इस प्रवाह को व्यवस्थित करने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर ऐसा लगता है कि ऋषियों की अभिव्यक्ति में इनका स्वतः निबन्धन हो गया है। ऋषियों ने इनके

[6]अलंकार समीक्षा, अनुप्रास प्रकरण

[7]अर्थे सति अर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः का. प्र. 9/83

[8]द्रष्टव्य का. प्र. 9/83 की वृत्ति

[9]पुनरुक्तवदाभासो विभिन्नाकारशब्दगा एकार्थतेव। का.प्र. 9/121

[10]निघण्टु 2/2

[11]निरुक्त 10/7

[12]द्रष्टव्यऋग्वेद सायण भाष्य 1/92/13

[13]अव रक्षणे। भ्वादिगण पाणिनीय धातुपाठ

लिये पृथक् प्रयत्न नहीं किया है, अतः रस की दृष्टी से भी इन्हें दुषित नहीं माना जा सकता।[14] उषस् सूक्तों में शब्दालंकार के अतिरिक्त अर्थालंकार के भी शतशः उदाहरण देखे जा सकते हैं। ऐसे ही काव्य के तत्व-विशेष की दृष्टी से ऋग्वेद के अन्य सूक्तों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. काव्यप्रकाश, मम्मट, व्या. आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, १९९८
2. अलंकार समीक्षा, लक्ष्मी नारायण पुरोहित, नाग प्रकाशन, दिल्ली, १९९७
3. सरस्वती कणठाभरण, भोजराज, व्या. कमलेश मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टल, वाराणसी, १९७६
4. ऋग्वेद, सायण भाष्य, अनु. भिष्मदत्त शर्मा, मेरठ, २००४
5. निघण्टु, निरुद्र छज्जूराम, मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन, दिल्ली, २०१५
6. ऋग्वेद में काव्य-तत्व, निगम शर्मा, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998

[14]द्रष्टव्य.ऋग्वेद में काव्य-तत्व.पृष्ट सं.40